तंत्रयोग में धारणा का विवेचनात्मक अध्ययन

(विज्ञान भैरव के विशेष संदर्भ में)

देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार के
मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग में
पी–एच. डी उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध–सार

शोधार्थी :
राजेश कुमार राज

परामर्शदाता :
डॉ. प्रणव पण्ड्या
कुलाधिपति
देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार

सह–परामर्शदाता :
प्रो. डॉ. ईश्वर भारद्वाज
विभागाध्यक्ष
मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग
देवसंस्कृति विश्वविद्यालय,
शान्तिकुँज, हरिद्वार
2007

शोध–प्रबन्ध सार

परमात्मा प्राप्ति की साधना प्रणाली के इतिहास में योग दर्शन एवं तंत्र दर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। योग साधना के विकास कम में अवान्तर धाराओं का आविर्भाव और सांकर्य उसके पूर्ण विकसित तथा समयानुकूल बनने हेतु महत्त्वपूर्ण कारक बना। तंत्र साधना में भी इस प्रकार के सांकर्य से साधकों को सहजता और परम उत्कर्ष की प्राप्ति हुई। इतिहास के मध्यकाल में साधना–परम्पराओं का एक–दूसरे से सांकर्य उस समय के ग्रंथों से स्पष्ट है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में तंत्र एवं योग की धारणाओं के इसी सांकर्य को उपस्थित करने का प्रयास किया गया है, तंत्र और योग परम्पराओं का मिश्रित स्वरूप है। तंत्रयोग की साधनाएँ तांत्रिक भावनाओं से ओतप्रोत होने के बावजूद यौगिक अनुशासन से प्रतिबद्ध है। योग के निरुद्ध चित्त को भैरवावस्था कहा गया है।

तंत्रयोग के अंतर्गत धारणाओं का विशेष संदर्भ विज्ञान भैरव ग्रंथ से लिया गया है जो तंत्रदर्शन का आगम प्रमाण होने के साथ–साथ योग के अनुशासन को भी अगीसात् करता है। अतः इसकी कारिकाएँ तंत्रयोग में धारणाओं को स्वरूप तथा विवेचना के योग्य बनाती हैं। विज्ञान भैरव ग्रंथ काश्मीर शैव–परम्परा के अंतर्गत है। अतएव धारणा की विवेचना हेतु काश्मीर शैवतंत्र के तथ्यों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है, परन्तु तंत्रयोग में धारणाओं के विवेचनात्मक अध्ययन को किसी विशेष तांत्रिक सम्प्रदाय के अंतर्गत न रखकर अनेक प्रचलित विचारधारा एवं मान्यताओं का संकलन किया गया है। तंत्रयोग में धारणाओं को स्वरूप, कम एवं भावना का आधार विज्ञान भैरव ग्रंथ है, परन्तु साथ–साथ इसे स्वतंत्र रूप से विकसित करने का प्रयास किया गया है, ताकि यौगिक तत्त्वों का समावेश हो एवं विधियाँ समयानुकूल हो। विज्ञान भैरव की धारणाओं के अतिरिक्त भी कुछ धारणाओं का संकलन किया गया है, जो सम्बन्धित अध्याय के विषय–वस्तु के अनुकूल है।

शोधकर्त्ता का उद्देश्य सहज और व्यावहारिक साधनाओं का संकलन, विश्लेषण, शोध और विवेचना करना है जो तंत्र दर्शन की योग पद्धति के अंतर्गत है। धारणाओं की

विवेचना दो खण्डों में की गई है। प्रथम खण्ड में धारणा में प्रयुक्त भाव विशेष एवं तत्त्व की व्याख्या तंत्र और योग दोनों विधाओं से किया गया है एवं दूसरे खण्ड में धारणा को चरणबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया गया है ताकि साधना की विधि के रूप में विकसित हो सके।

धारणा का अर्थ, स्वरूप एवं महत्त्व

ध्येय वस्तु पर मन की एकाग्रता को धारणा कहते हैं। यह अष्टांग योग का छठा अंग है एवं इसके उपरांत ही ध्यान एवं समाधि सम्भव है। धारणा के लिए मन की एकाग्रता अनिवार्य है, मन की विक्षेपावस्था में धारणा अथवा ध्यान का अभ्यास असम्भव है। प्रत्याहार के अभ्यास से जब इन्द्रियाँ अंतर्मुख हो जाती है। तब चेतना धारणा के विषय के तदाकार होकर दृढ़ भूमि तैयार करती है। इसी दृढ़भूमि पर अविरल सजगता से ध्येय का साक्षात्कार होता है। इस दर्शन को ध्यान कहते हैं। धारणा में आंतरिक रूप से जो कुछ भी प्रकट होता है, वह अधिक तीव्र और शक्तिशाली होता है।

धारण के चार स्वरूप हो सकते हैं–दूरस्थ, समीपस्थ, शरीरस्थ और मनस्थ। इन स्वरूपों के अतिरिक्त अनेक ऐसी धारणा हैं जो अत्यन्त प्रभावी और प्रसिद्ध हैं। धारणा के लिए वैराग्य और अभ्यास, त्याग और तप के द्वारा धैर्य के साथ मन की बिखरी हुई रश्मियों को समेटकर साहस और अथक शक्ति के साथ निरन्तर श्रद्धापूर्वक भावना करनी पड़ती है, दीर्घकाल के उपरांत ही दृढ़भूमि तैयार होती है।

धारणा के विशेष अभ्यासों से सामान्य मनुष्य अपने बिखरे विचारों को सकेन्द्रित कर सकता है। विक्षिप्त तथा दुर्बल मन की तुलना में सकेन्द्रि मन अत्यन्त शक्तिशाली होता है। इसी प्रकार सकेन्द्रित विचार में भी अपार शक्ति है। इसमें तेजस्वी ज्ञान की शक्ति है, दृश्य प्रपंच की पृष्ठभूमि में अंतर्निहित सत्य को अधिक स्पष्टता से देखने की शक्ति है। इसमें महान उपलब्धियॉ प्राप्त करने तथा कल्पनातीत परिणाम में कार्य करने की क्षमता है। एक सकेन्द्रित मन एक विश्रान्त मन भी होता है। धारणा की परिकल्पना मात्र विचारों को रोक देने का नहीं है, वरन् व्यक्ति के अवधान और सजगता को उस

अवस्था तक ला देने का भी है, जहाँ शरीर और मन की अतिसूक्ष्म शक्तियाँ एक साथ काम करती हैं। इसलिए धारणा से विश्रान्ति मिलती है।

वैदिक, यौगिक एवं तांत्रिक परम्पराओं में धारणा

आध्यात्मिक परम्पराओं में धारणा के अनेक स्वरूप प्रचलित रहे हैं। वैदिक परम्परा में धारणा को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–कर्म, उपासना और ज्ञान। कर्मकाण्ड में एक वाह्य पद्धति या किया को अपनाकर स्वयं को शुद्ध और अंतर्मुखी करने का प्रयास किया जाता है। उपासना काण्ड में एक आंतरिक विधि को अपनाकर स्वयं को विकसित करने का प्रयत्न होता है। ज्ञान काण्ड में बौद्धिक मार्ग को अपनाकर बौद्धिक परिवर्तन द्वारा आत्मशुद्धि का प्रयास होता है। इन धारणाओं से उत्पन्न ज्ञान को सात भूमिकाओं में विभाजित किया गया है–शुभेच्छा, आत्मविचार, तनुमानसी, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थ भावना और मोक्ष

यौगिक परम्पराओं में धारणा किया प्रधान है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध आदि विविध क्रियाओं द्वारा पहले चेतना को धारणा के योग्य बनाते हैं। फिर धारणा के अभ्यास से चेतना को एकाग्र किया जाता है। तीन विभिन्न अवस्थाओं से होते हुए धारणा का स्वरूप सूक्ष्म हो जाता है और ध्येय का साक्षात् होने लगता है। इन धारणाओं से चेतना सूक्ष्म होकर ध्यान और समाधि में परिवर्तित हो जाता है। अतः धारणा का उद्देश्य ध्यान और समाधि ही है। कुछ विद्वान ध्यान और समाधि को धारणा की यात्रा के पड़ाव मात्र मानते हैं एवं समाधि को अंतिम पड़ाव माना गया है। तांत्रिक परम्पराओं में धारणा को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है–स्थूल, सूक्ष्म और परा। शैवागमों में धारणा को चार उपायों में विभाजित किया गया है–आणव, शाक्त, शाम्भव और अनुपाय।

तंत्रदर्शन

तंत्रदर्शन भारतीय दर्शन का अमूल्य धरोहर है जो वैदिक परम्परा के साथ–साथ पुष्पित–पल्लिवित हुआ। अपने प्रारम्भिक काल में दोनों धारा अपने–अपने मार्गों पर शुद्ध रूप से प्रवाहित हो रही थी, किन्तु परवर्ती काल में इन दोनों परम्पराओं में परस्पर मिश्रण अथवा सांकर्य हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि ये दोनों एक–दूसरे की पूरक हो

गयीं। तंत्र का अर्थ चेतना का विस्तार (तनोति) एवं चेतना को बंधनमुक्त (त्रायति) करना है। परम शिव के विश्वरूप में स्फुरित और फिर अपने रूप में स्वस्थ होने की प्रकिया ही तंत्रशास्त्र का वर्ण्य–विषय है। तंत्र प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का मार्ग है। प्रवृत्ति मार्ग से चलकर निवृत्ति को अपनाते हुए सम्पूर्ण विश्व में एकत्व का दर्शन और उस रूप में अपना तादात्म्य स्थापित करना तंत्र का चरम प्रतिपाद्य है। तंत्र विज्ञान की भॉति अन्वेषण की प्रकिया है, किन्तु विज्ञान वाह्य उपकरणों से जड़ का अन्वेषण करता है, वहीं तंत्र अंतर्जगत् का। सूक्ष्म से स्थूल तत्वों का आध्यात्मिक विवरण तंत्रशास्त्र में मिलता है।

आध्यात्मिक परम्पराओं में 'तंत्र' सर्वाधिक प्रचलित एवं सर्वमान्य परम्परा रही है, जिसे कई विद्वान समस्त परम्पराओं का पिता मानते हैं; ऐतिहासिक दृष्टि के अनुसार आज से हजारों वर्ष पूर्व एक ऐसा समय था, जब तंत्र का वर्चस्व भारत में ही नहीं, अपितु समस्त एशिया में व्याप्त था। वैदिक सभ्यताओं के पूर्व सिन्धु घाटी की सभ्यता के मिले अवशेषों में तांत्रिक पद्धति के मौजूदगी का पता चलता है। इन अवशेषों से यह सिद्ध होता है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के निवासी शैवधर्म के अनुयायी थे। वैदिक काल में इसके प्रचलन के साक्ष्य हमें वेदों में ही मिलते हैं। अथर्ववेद के अलावा ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में भी तंत्र का प्रयोग हुआ है तथा इसकी पद्धतियों के मौलिक विश्लेषण हमें मिलते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक् एवं उपनिषदों में भी इसका समुचित प्रयोग दिखता है। योगोपनिषद् एवं पुराण के बाद इसका प्रचलन बढ़ता ही चला गया। नये दर्शन तथा धर्म बने तथा ये भी तांत्रिक मान्यता को अंगीकार किये जैसे बौद्ध धर्म और जैन धर्म। परवर्ती काल में बौद्धों का योगाचार, व्रषयान आदि, गोरखनाथ का नाथपंथी योग आदि भारत में तंत्र की प्राचीनता एवं धार्मिक प्रधानता के सुस्पष्ट द्योतक हैं। छठी से तेरहवीं शती का काल तंत्रशास्त्र एवं साहित्य के आविर्भाव का काल था, परन्तु उसके विस्तार का जो परिचय तत्तद ग्रंथों से उपलब्ध होता है, उससे यह सिद्ध होता है कि यह साहित्य वैदिक वाङ्मय की अपेक्षा अधिक व्यापक और विशाल था।

तंत्र के मूलभूत सिद्धान्त

तंत्र साहित्य में मात्र पॉच प्रमुख तंत्र परम्पराओं के शास्त्र एवं प्रमाण मिलते हैं, इनमें भी अधिकांश विलुप्त ही हैं। ये हैं–शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य और सौर। सौरतंत्र में सूर्य की उपासना–आराधना का वर्णन है जो वैदिक काल से ही प्रचलित है इसी के अंतर्गत गायत्री तंत्र का उल्लेख है। गाणपत्य तंत्र का सम्बन्ध भगवान गणेश से है जिसका उल्लेख ऋग्वेद में भी मिलता है। गणपति से सम्बन्धित लगभग 50 तंत्र, 25 उपतंत्र, 2 पुराण और 1 डामर तंत्र है। वैष्णव तंत्र के दो प्राचीन परम्पराएँ दृष्टिगोचर होते हैं–वैखानस और पांचरात्र। इन साहित्यों में नारायण और शिव का संवाद है। वैष्णव तंत्र की संख्या अज्ञात है। विश्वामित्र संहिता में पांचरात्र से सम्बन्धित 108 तंत्रों का उल्लेख मिलता है। प्रथम शताब्दी से दशम् शताब्दी के काल में काल तंत्र का सर्वाधिक प्रचलन था। इसलिए शाक्तोपासना सम्बन्धी ग्रंथ ही अधिक लिखे गये। इनमें दशमहाविद्या का प्रमुख स्थान है। शंकराचार्य ने आनन्द लहरी में 64 शाक्त तंत्रों का संकेत किया है। कौल मत से सम्बन्धित 54 तंत्र ग्रंथ उपलब्ध है, परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार कौल ग्रंथ की संख्या 100 से भी अधिक है। शैव तंत्र के काश्मीर परम्परा में 64 भैरवागम, तमिलनाडू के शैव सिद्धान्त में 10 शैवागम एवं कर्नाटक के वीर शैव परम्परा में 18 आगम प्रचलित है। इन पॉच परम्पराओं के अलावे कई तांत्रिक धाराएँ यत्र–तत्र प्रसिद्ध हैं। दाशरथी तंत्र के द्वितीय अध्याय में अन्य 64 तंत्रों का उल्लेख मिलता है।

तंत्र में मुख्यतः सात आचार हैं–वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। तंत्र दर्शन के शैव परम्परा में आठ विचार धाराएँ है–पाशुपत, सिद्धान्त, शैव सिद्धान्त (शुद्धाद्वैत), लकुलीश पाशुपत सिद्धान्त (द्वैताद्वैत), विशिष्टाद्वैत शैव सिद्धान्त, विशेषाद्वैत शैव सिद्धान्त, नन्दिकेश्वर शैव सिद्धान्त, रसेश्वर शैव सिद्धान्त एवं काश्मीर शैव सिद्धान्त।

विज्ञान भैरव तंत्र

इन आचार एवं सिद्धान्तों में वैदिक एवं यौगिक मान्यताओं के सांकर्य से उसके पूर्ण विकसित तथा समयानुकूल ही नहीं, बल्कि इस प्रकार के सांकर्य से साधकों को

सहजता और परम उत्कर्ष की प्राप्ति हुई। 'तंत्रयोग' शब्द का अर्थ भी इसी सांकर्य को उपस्थित करता है। तंत्रयोग की धारणा तांत्रिक भावना से ओतप्रोत होने के बावजूद यौगिक अनुशासन से प्रतिबद्ध है। योग के निरुद्ध चित्त को भैरवावस्था कहा गया हैं। तंत्रयोग के अंतर्गत धारणाओं के विशेष संदर्भ विज्ञान भैरव ग्रंथ से लिया गया है जो तंत्र दर्शन का आगम प्रमाण होने के साथ–साथ योग के अनुशासन को भी अंगीसात् करता है। तंत्रयोग में काश्मीर शैवागम के ज्ञान और योग पदों का विवेचन है। परमेश्वर परम शिव को ही भैरव कहा गया है जो इस विश्व का भरण, रवण और वमन करने वाला है। निग्रह और अनुग्रह ये दोनों भगवान भैरव के ही व्यापार हैं। यह भैरव विज्ञान स्वरूप है अर्थात् बोधात्मक चिदात्मक है। विज्ञान भैरव पद प्रकाश विमर्शात्मक शिव और शक्ति के सामरस्य का बोधक है। इस परमार्थ स्थिति तक पहुँचाने के लिए प्रस्तुत ग्रंथ में 112 धारणाओं का उपदेश किया गया है।

प्राण भावना

प्राण वह जीवनी शक्ति है जो शरीर, मन और चेतना को जोड़ती है। प्राणशक्ति के पाँच विभेद हैं–प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। पाँच उपप्राण भी हैं–नाग, कूर्म, किकर, देवदत्त और धनन्जय। प्राण स्पन्द को यत्न कहते हैं जो संवेद्य एवं असंवेद्य रूप से कही स्वारसिक होता है कहीं इच्छापूर्वक, कहीं स्फुट तो कहीं अस्फुट। प्राण और अपान की गति की जिस स्थान पर उत्पत्ति होती है अथवा जहाँ जाकर रुक जाती है, उसका हृदय और द्वादशान्त कहते हैं। प्राणायाम का प्रमुख अंग हैं–रेचक, पूरक और कुम्भक। कुम्भक का तात्पर्य श्वास के अवरोध से है। कुम्भक तीन प्रकार का है–अंतरंग, बहिरंग एवं केवली। प्राण धारणा के 14 प्रयोगों का वर्णन किया गया है।

नाद भावना

नादानुसंधान को आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होने के लिए सर्वोत्कृष्ट उपाय माना गया है। नाद को चार स्तरों में विभाजित किया गया है–परा, पश्यन्ति, मध्यमा और बैखरी। नाद के आठ भेदे हैं–घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झंकार एवं ध्वंकृति।

संत मत में नाद साधना, सुरत शब्द योग के नाम से प्रसिद्ध है। नाद भावना की 5 धारणा का वर्णन किया गया है।

प्रणव भावना

प्रणव वह विशिष्ट बीजमंत्र है जो परमपद को प्रदर्शित करता है। प्रणव समपूर्ण प्राणियों का प्राण है, इसी के द्वारा जीवन प्रतिष्ठित रहता है। अकार, उकार, मकार, बिन्दु, अर्द्धचन्द्र, रोधनी, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, सपना और उन्मना अपनी इस बारह कलाओं से ओंकार पृथ्वी से लेकर शिव पर्यन्त समस्त तत्वों और भुवनों को आकलित करता है। समनापर्यन्त पाशजाल का विस्तार माना जाता है। इसको पार करके उन्मना में अवस्थिति ही मोक्ष प्राप्ति का द्वार है। प्रणव भाव की 3 धारणा का वर्णन किया गया है।

शून्य भावना

परम शिव शून्यपद है। छः शून्यों का त्याग करके सातवें शून्य में लय प्राप्त करना ही परमपद की उपलब्धि है। योग दर्शन में शून्य के स्थान पर आकाश शब्द का प्रयोग हुआ है। सामान्यतः आकाश के तीन क्षेत्र जो भौतिक शरीर के अंतर्गत हैं एवं उनसे परे पॉच अन्य आकाश का वर्णन है। ये आठों हैं–चिदाकाश, हृदयाकाश, दहराकाश, गुणरहित आकाश, परम आकाश, महाकाश, तत्वाकाश एवं सूर्याकाश आदि शून्य भावना में नौ धारणाओं का वर्णन किया गया है।

षडध्व भावना

प्रमातृगत अध्वा तीन प्रकार का होता है–पद, मंत्र और वर्ण। इसी प्रकार प्रमेयगत अध्वा भी तीन प्रकार का होता है–पुर (भुवन), तत्व और कला। यह सभी छः प्रकार के अध्वा सामान्य स्पन्दनात्मा प्राण में कल्पित हैं तथा पूर्णतया प्रतिष्ठित हैं। तांत्रिक दीक्षा में षडध्व की शुद्धि अनिवार्य मानी जाती है। षडध्व भावना की चारणा धारणाएँ वर्णित है।

मध्य भावना

मध्य भावना अद्वैत दशा है। प्रमाता और प्रमेय को अलग–अलग भाव न करके, व्यक्त और अव्यक्त भाव के बीच में रूपरहित, स्वभावरहित मध्य भाव में चित्त विश्रान्ति

होने से यह भावना विकसित होती है। बद्ध जीव सदैव भाव की व्यक्त या अव्यक्त दशा में भ्रमित रहता है। क्रमशः दो स्पन्दन के मध्य स्पन्दन का अभाव होता है। यह अभाव ही परमेश्वर का परम स्वरूप है। मध्य भावना के अंतर्गत पॉच धारणाओं का उल्लेख है।

सुख भावना

तंत्रयोग सुख भाव से भैरव भाव में रूपान्तरण की सहज धारणा को प्रकाशित करता है। शिवलीला का यह स्वरूप भी चितिशक्ति का ही विकास है। सुख और आनन्द के भाव में अन्तर केवल शुद्धाशुद्धि की है। धारणा की गहराई में अशुद्धियॉ रूपान्तरित होकर विशुद्ध शिवरूप हो जाता है। सुख भावना के नौ धारणाओं का उल्लेख किया गया है।

मुद्रा भावना

सृष्टि, स्थिति और संहार संवित समूह रूप कम को जो मुद्रित करती है–आत्मसात करती है, वह तुरीय चितिशक्ति ही कममुद्रा है। इसके अंतर्गत पॉच मुद्राओं का उल्लेख मिलता है–करंकिणी, कोधना, भैरवी, लेलिहाना और खेचरी। मुद्रा अपने यथार्थ स्वरूप में परसंवित्तत्त्व का ही साधनात्मक एवं योगात्मक स्वरूप है। मुद्रा भावना की 12 धारणाएँ वर्णित हैं।

तिमिर भावना

विश्वात्मक दृष्टि से प्रकाश स्रोतपूर्ण, परन्तु अंधकार बिना स्रोत का ही सर्वत्र व्याप्त है। अंधकार की भावना करने से प्रकाश का उदय होना उसी प्रकार सम्भव है जैसे मंत्र से नाद का उदय होना। तंत्रयोग मं तिमिर भावना शून्य भावना का ही एक अन्य स्वरूप है एवं शून्य की ही भॉति आकाश तत्त्व पर ध्यान किया जाता है। तिमिर भावना के अंतर्गत 4 धारणाओं का उल्लेख है।

अनुत्तर तत्त्व

जिसके उत्तर में कोई अन्य नहीं, वह परम शिव सर्वत्र व्याप्त, सर्वश्रेष्ठ, शिवशक्ति का सामरस्यमय परमतत्त्व ही अनुत्तर तत्त्व है। साधक अनुत्तर विमर्श में वाणी और मन के प्रत्यक्ष होने योग्य नहीं रहता अर्थात् सम्बन्ध कोई विचार विमर्श उस अवस्था में नहीं होता

है। इसी निरुत्तरीय दशा को अनुत्तर कहा गया है। अनुत्तरत्तत्त्व के अंतर्गत पॉच धारणओं का वर्णन किया गया है।

माया कला एवं इच्छा

माया तत्त्व से मोहित जीव परस्पर एक–दूसरे को भिन्न समझने लगते हैं। अतः भेद दृष्टि का विस्तार करना ही माया का धर्म है। माया कारण है कला कार्य है। अणु और कला एक–दूसरे से अतिसन्निकट है। इच्छाशक्ति परमेश्वर की स्वातंत्र्य शक्ति है, जिसमें ज्ञानशक्ति और कियाशक्ति सदैव अभेद रूपता में स्फुरित होती है। इसके अंतर्गत नौ धारणाओं का उल्लेख किया गया है।

अहं भाव

परम शिव प्रकाशरूप हैं और विमर्श उसका स्वतंत्र स्वभाव है। विमर्श नामक अपने इस अनन्योन्मुख स्वातंत्र्य स्वभाव से वह अपनी पूर्ण अहन्ता में अहर्निश स्पन्दमान रहता है। इस स्वभाव अभिव्यक्ति की लीला में वह 'अहम्' रूप में अर्थात् प्रमाता के रूप में अनन्त प्रकाश से अवस्थित रहता है। अहम् भावना की तीन धारणाओं का उल्लेख किया गया है।

अवस्थाएँ और स्वरूप

तंत्रयोग के अंतर्गत चेतना की चार अवस्थाओं का वर्णन है–जाग्रत, स्वप्न, निद्रा एवं तुरीय। इसके पाँच अन्य अवस्थाएँ हैं–मूढ़, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्ध। तीन स्वरूप का वर्णन है–स्थूल, सूक्ष्म और कारण एवं प्रत्यभिज्ञा के विविध स्वरूप का वर्णन है। इसके अंतर्गत नौ धारणाओं का उल्लेख है।

सप्तविध समाधि

चित्त की उस चिन्मय आत्मा के साथ अखण्डाद्वैत भाव से स्थिरीभूत होकर अद्वैत ब्रह्म सत्ता के रूप में प्रतीत होने वाली अवस्था विशेष को समाधि कहते हैं। यह सात प्रकार का है। इसके लिए पॉच धारणाओं का वर्णन किया गया है।

भक्ति विवेचन

ईश्वर के प्रति प्रेम को भक्ति कहते हैं। भक्ति वासना तथा अहंकार को नष्ट करते हुए दिव्य भाव, आनन्द, शान्ति तथा ज्ञान का संचार करती है। भक्त जन्म–मृत्यु के चक्र से विमुक्त हो जाता है। भक्ति मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है–परा एवं अपरा अपराभक्ति नौ प्रकार की होती है। भक्ति भावना की दो धारणा का वर्णन है।

शुद्धि वस्तु का धर्म नहीं है, केवल चैतन्य ही शुद्ध और पवित्र है। जड़ प्रकृति ही अशुद्धि है अशुद्ध सृष्टि को ही भेदपूर्ण सृष्टि पर अपरासृष्टि कहते हैं। इस भावना की छः धारणाओं का उल्लेख किया गया है।

भैरव स्वरूप का निरूपण

भैरव स्वरूप शुद्ध प्रकाशरूप है और विमर्शरूपिणी आत्मशक्ति से अभिन्न है। भैरव स्वरूप का निरूपण सात प्रमाता जो परमेश्वर से अभिन्न ही है–की जाती है। इसकी चार धारणाओं का वर्णन किया गया है।

बन्धन और मोक्ष

बन्धन और मोक्ष केवल बौद्धिक व्यापार है वास्तविक नहीं। स्वरूप का प्रथम सोपान ही मोक्ष है। विश्व परमेश्वर का प्रकाश विस्फार है। इस रूप में उसे न जानना ही बन्ध है। इस रूप में जानना और वही हो जाना मोक्ष है। इसी तात्पर्य से बन्ध निमित्त अज्ञान का विरोधी होने के कारण ज्ञान को मोक्ष कारण कहा गया है। इस हेतु दो धारणाओं का वर्णन है।

जीवन्मुक्ति

अहम्रूप प्रमाता और इदम् रूप प्रमेय में तात्त्विक अद्वय परिज्ञान ही संकोचरूप बन्धन से मुक्ति है। जिसका अनुभव प्रमाता को अपने सांसारिक जीवनकाल में ही होने के

कारण इसे जीवन्मुक्ति की संज्ञा दी गई है। इससे सम्बन्धित तीन धारणाओं का वर्णन किया गया है।

जप–पूजा–होम

भाव और अभाव दोनों पदों से रहित होकर शिवस्वरूप का परामर्श ही जप है। शिव से सामंजस्य स्थापित कर विश्वभाव का उसमें अर्पण करना ही पूजा है। इसके अंतर्गत चार धारणाओं का वर्णन है।

अजपाजप

जीव का जीवत्व हकार और सकार इन दो वर्णों से अभिव्यक्त होता है। इसलिए कहा गया है कि 'हंस–हंस' के मंत्र से जीव सदा उस परमात्मा का जाप करता रहता है। इसकी सजगता ही अजपाजप है। अजपाजप को दो धारणाओं में वर्णन किया गया है।

****